जाति, धर्म और लैंगिक मसले

1073CH04

अध्याय 3

परिचय

सामाजिक विविधता लोकतंत्र के लिए कोई खतरा नहीं होती। राजनीति में सामाजिक असमानताओं की अभिव्यक्ति कोई असंभव बात नहीं है। कई बार तो यह अभिव्यक्ति लोकतंत्र के लिए लाभकर भी होती है। इस अध्याय में हम इस विचार को भारत में लोकतंत्र के कामकाज के संदर्भ में परखने की कोशिश करेंगे। हम यहाँ सामाजिक विभाजन और भेदभाव वाली तीन सामाजिक असमानताओं पर गौर करेंगे। ये हैं लिंग, धर्म और जाति पर आधारित सामाजिक विषमताएँ। ये असमानताएँ कैसी हैं और किस तरह राजनीति में अभिव्यक्त होती हैं, हम इस पर बारी-बारी से गौर करेंगे। फिर, हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि इन असमानताओं पर आधारित अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ लोकतंत्र के लिए लाभकर हैं या नुकसानदेह।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

लैंगिक मसले और राजनीति

स्त्री-शक्ति का उद्घोष करता बंगाल का एक पोस्टर

आइए, अपनी बात की शुरुआत हम लैंगिक असमानता से करें। सामाजिक असमानता का यह रूप हर जगह नज़र आता है लेकिन राजनीति के अध्ययन में शायद ही इस बात की पहचान की जाती है। लैंगिक असमानता को स्वाभाविक या कहें कि प्राकृतिक और अपरिवर्तनीय मान लिया जाता है। लेकिन, लैंगिक असमानता का आधार स्त्री और पुरुष की जैविक बनावट नहीं बल्कि इन दोनों के बारे में प्रचलित रूढ़ छवियाँ और तयशुदा सामाजिक भूमिकाएँ हैं।

बात बोले भेद खोले

श्रम का लैंगिक विभाजन : काम के बँटवारे का वह तरीका जिसमें घर के अंदर के सारे काम परिवार की औरतें करती हैं या अपनी देखरेख में घरेलू नौकरों/नौकरानियों से कराती हैं।

निजी और सार्वजनिक का विभाजन

लड़के और लड़कियों के पालन-पोषण के क्रम में यह मान्यता उनके मन में बैठा दी जाती है कि औरतों की मुख्य जिम्मेवारी गृहस्थी चलाने और बच्चों का पालन-पोषण करने की है। यह चीज़ अधिकतर परिवारों के श्रम के लैंगिक विभाजन से झलकती है। औरतें घर के अंदर का सारा काम काज, जैसे– खाना बनाना, सफ़ाई करना, कपड़े धोना और बच्चों की देखरेख करना आदि करती हैं जबकि मर्द घर के बाहर का काम करते हैं। ऐसा नहीं है कि मर्द ये सारे काम नहीं कर सकते। दरअसल वे सोचते हैं कि ऐसे कामों को करना औरतों के ज़िम्मे है। पर जब सिलाई-कटाई से लेकर इन्हीं सारे कामों के लिए पैसे मिलते हैं तो मर्द खुशी-खुशी यही काम घर के बाहर करते हैं। अधिकांश दर्जी या होटल के रसोइए पुरुष होते हैं। इसी प्रकार औरतें घर के बाहर का काम न करती हों– ऐसा भी नहीं है। गाँवों में स्त्रियाँ पानी और जलावन जुटाने से लेकर खेत में खटने तक का काम करती हैं। शहरों में भी हम देखते हैं कि कोई गरीब स्त्री किसी मध्यमवर्गीय परिवार में नौकरानी का काम कर रही है और मध्यमवर्गीय स्त्री काम करने के लिए दफ़्तर जा रही है। सच्चाई यह है कि अधिकतर महिलाएँ अपने घरेलू काम के अतिरिक्त अपनी आमदनी के लिए कुछ न कुछ काम करती हैं लेकिन उनके काम को ज़्यादा मूल्यवान नहीं माना जाता और उन्हें दिन रात काम करके भी उसका श्रेय नहीं मिलता।

श्रम के इस तरह के विभाजन का नतीजा यह हुआ है कि औरत तो घर की चारदीवारी में सिमट के रह गई है और बाहर का सार्वजनिक जीवन पुरुषों के कब्ज़े में आ गया है। मनुष्य जाति की आबादी में औरतों

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

का हिस्सा आधा है पर सार्वजनिक जीवन में, खासकर राजनीति में उनकी भूमिका नगण्य ही है। यह बात अधिकतर समाजों पर लागू होती है। पहले सिर्फ़ पुरुषों को ही सार्वजनिक मामलों में भागीदारी करने, वोट देने या सार्वजनिक पदों के लिए चुनाव लड़ने की अनुमति थी। धीरे-धीरे राजनीति में लैंगिक मुद्दे उभरे। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में औरतों ने अपने संगठन बनाए और बराबरी के अधिकार हासिल करने के लिए आंदोलन किए। विभिन्न देशों में महिलाओं को वोट का अधिकार प्रदान करने के लिए आंदोलन हुए। इन आंदोलनों में महिलाओं के राजनीतिक और वैधानिक दर्जे को ऊँचा उठाने और

आदर्श स्त्री की कुछ बानगी...

चुनिए, इनमें से आप कौन हैं?

अपने समाज में आदर्श स्त्री के बारे में प्रचलित इन सारी धारणाओं पर चर्चा करें। क्या आप इन सबसे सहमत हैं? अगर नहीं तो तो बताइए कि आदर्श स्त्री के बारे में आपकी धारणा क्या है?

Reprint 2026-27

उनके लिए शिक्षा तथा रोज़गार के अवसर बढ़ाने की माँग की गई। मूलगामी बदलाव की माँग करने वाले महिला आंदोलनों ने औरतों के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में भी बराबरी की माँग उठाई। इन आंदोलनों को नारीवादी आंदोलन कहा जाता है।

लैंगिक विभाजन की राजनीतिक अभिव्यक्ति और इस सवाल पर राजनीतिक गोलबंदी ने सार्वजनिक जीवन में औरत की भूमिका को बढ़ाने में मदद की। आज हम वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबंधक, कॉलेज और विश्वविद्यालयी शिक्षक जैसे पेशों में बहुत-सी औरतों को पाते हैं जबकि पहले इन कामों को महिलाओं के लायक नहीं माना जाता था। दुनिया के कुछ हिस्सों, जैसे स्वीडन, नार्वे और फिनलैंड जैसे स्कैंडिनेवियाई देशों में सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी का स्तर काफ़ी ऊँचा है।

देश के छह राज्यों में 'समय का उपयोग' संबंधी सर्वेक्षण किया गया। इससे पता चलता है कि एक औरत औसतन रोज़ाना साढ़े सात घंटे से ज़्यादा काम करती है जबकि एक मर्द औसतन रोज़ साढ़े छह घंटे ही काम करता है। फिर भी पुरुषों द्वारा किया गया काम ही ज़्यादा दीख पड़ता है क्योंकि उससे आमदनी होती है। औरतें भी ढेर सारे ऐसे काम करती हैं जिनसे अप्रत्यक्ष रूप से आमदनी होती है लेकिन उनका ज़्यादातर काम घर की चारदीवारी के अंदर होता है। इसके लिए उन्हें पैसे नहीं मिलते इसलिए औरतों का काम दिखाई नहीं देता।

समय का उपयोग (दैनिक–घंटे और मिनट में)

गतिविधियाँ	पुरुष	महिला
आमदनी वाले काम	6:00	2:40
घर के काम	0.30	5:00
गप्पबाजी	1.25	1:20
बिना काम के/फुरसत	3:40	3:50
सोना, अपने शरीर की साफ़-सफ़ाई, पढ़ना वगैरह	12.25	11:10

स्रोत : भारत सरकार, *समय का उपयोग* सर्वेक्षण,1998–99

आप अपने परिवार में भी 'समय का उपयोग' वाला सर्वेक्षण कर सकते हैं। अपने परिवार के सभी वयस्क पुरुषों और महिलाओं के काम पर एक हफ़्ते तक गौर करें और यह दर्ज करते चलें कि निम्नलिखित कामों पर हर आदमी कितना समय देता है : आमदनी वाले काम [दफ़्तर, दुकान या कारखाना अथवा खेत वगैरह में काम], घरेलू काम [खाना बनाना, झाड़ू-पोंछा-बरतन धोना, कपड़े धोना, पानी लाना, बच्चों और बूढ़ों की देखरेख करना वगैरह], पढ़ना और मनोरंजन, गप-शप करना, अपने शरीर की साफ़-सफ़ाई, आराम करना या सोना। ज़रूरी लगे तो आप नयी श्रेणी भी बना सकते हैं। इसमें से हर काम में जो समय लगता है उसका हफ़्ते भर का हिसाब जोड़ लें और फिर उसे सात से भाग देकर प्रत्येक सदस्य का रोज़ का औसत समय निकालें। क्या आपके परिवार में भी महिलाएँ पुरुषों से ज़्यादा काम करती हैं?

बात बोले भेद खोले

नारीवादी : औरत और मर्द के समान अधिकारों और अवसरों में विश्वास करने वाली महिला या पुरुष।

not to be republished © NCERT

Reprint 2026-27

हमारे देश में आज़ादी के बाद से महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है पर वे अभी भी पुरुषों से काफी पीछे हैं। हमारा समाज अभी भी पितृ-प्रधान है। औरतों के साथ अभी भी कई तरह के भेदभाव होते हैं, उनका दमन होता है–

- महिलाओं में साक्षरता की दर अब भी मात्र 54 फीसदी है जबकि पुरुषों में 76 फीसदी। इसी प्रकार स्कूल पास करने वाली लड़कियों की एक सीमित संख्या ही उच्च शिक्षा की ओर कदम बढ़ा पाती हैं। जब हम स्कूली परीक्षाओं के परिणाम पर गौर करते हैं तो देखते हैं कि कई जगह लड़कियों ने बाजी मार ली है और कई जगहों पर उनका प्रदर्शन लड़कों से बेहतर नहीं तो कमतर भी नहीं है। लेकिन आगे की पढ़ाई के दरवाज़े उनके लिए बंद हो जाते हैं क्योंकि माँ बाप अपने संसाधनों को लड़के-लड़की दोनों पर बराबर खर्च करने की जगह लड़कों पर ज़्यादा खर्च करना पसंद करते हैं।
- इस स्थिति के चलते अब भी ऊँची तनख्वाह वाले और ऊँचे पदों पर पहुँचने वाली महिलाओं की संख्या बहुत ही कम है। भारत में औसतन एक स्त्री एक पुरुष

मम्मी हरदम बाहर वालों से कहती है : "मैं काम नहीं करती। मैं तो हाउसवाइफ हूँ।" पर मैं देखती हूँ कि वह लगातार काम करते रहती है। अगर वह जो करती है उसे काम नहीं कहते तो फिर काम किसे कहते हैं?

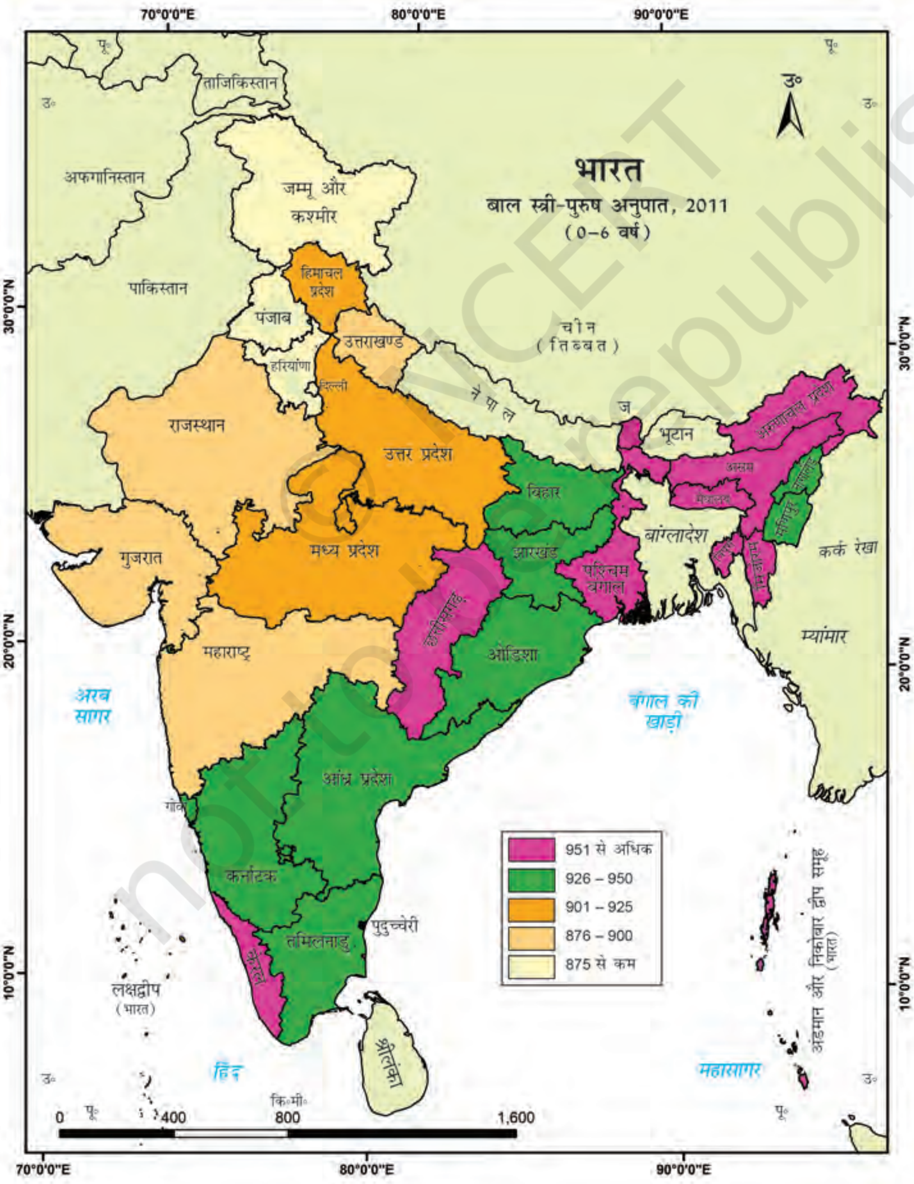

स्रोतः 2011 की जनगणना रिपोर्ट

बात बोले भेद खोले

पितृ-प्रधान : इसका शाब्दिक अर्थ तो पिता का शासन है पर इस पद का प्रयोग महिलाओं की तुलना में पुरुषों को ज़्यादा महत्व, ज़्यादा शक्ति देने वाली व्यवस्था के लिए भी किया जाता है।

क्या आप इस मानचित्र में अपने राज्य को पहचान सकते हैं? इस ज़िले में स्त्री-पुरुष का अनुपात कितना है? आप इस अनुपात को अलग रंगों में अंकित ज़िलों से कितना कम या ज़्यादा पाते हैं?

उन राज्यों की पहचान करें जिसमें बाल लिंग-अनुपात 900 से कम है।

अगले पृष्ठ पर दिए गए पोस्टर से इस नक्शे की तुलना करें। ये दोनों किस तरह हमें एक ही मुद्दे के बारे में अलग-अलग ढंग से बताते हैं?

not to be republished © NCERT

Reprint 2026-27

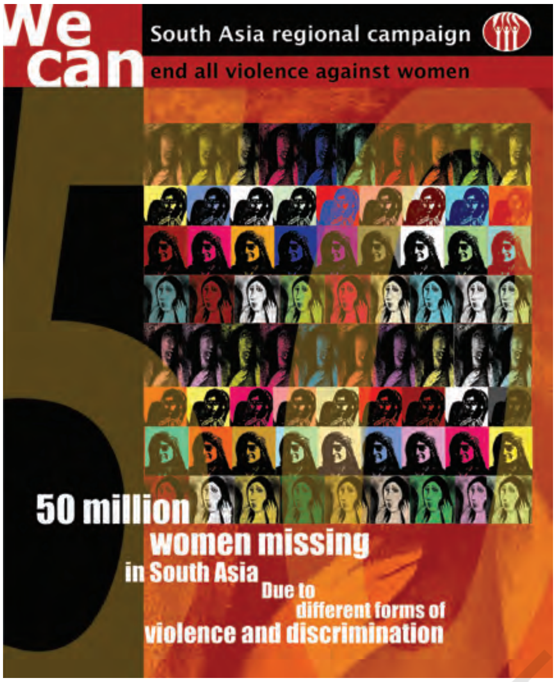

ऑक्सफ़ेम जी.बी.

की तुलना में रोज़ाना एक घंटा ज़्यादा काम करती है पर उसको ज़्यादातर काम के लिए पैसे नहीं मिलते इसलिए अक्सर उसके काम को मूल्यवान नहीं माना जाता।

- समान मज़दूरी से संबंधित अधिनियम में कहा गया है कि समान काम के लिए समान मज़दूरी दी जाएगी। बहरहाल, काम के हर क्षेत्र में यानी खेल-कूद की दुनिया से लेकर सिनेमा के संसार तक और कल-कारखानों से लेकर खेत-खलिहान तक महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मज़दूरी मिलती है, भले ही दोनों ने समान काम किया हो।
- भारत के अनेक हिस्सों में माँ-बाप को सिर्फ़ लड़के की चाह होती है। लड़की को जन्म लेने से पहले ही खत्म कर देने के तरीके इसी मानसिकता से पनपते हैं। इससे देश का लिंग अनुपात [प्रति हज़ार लड़कों पर लड़कियों की संख्या] गिरकर 919 रह गया है। साथ लगा नक्शा बताता है कि कई जगहों पर यह अनुपात गिरकर 850 और कहीं-कहीं तो 800 से भी नीचे चला गया है।

महिलाओं के उत्पीड़न, शोषण और उन पर होने वाली हिंसा की खबरें हमें रोज़ पढ़ने को मिलती हैं। शहरी इलाके तो महिलाओं के लिए खास तौर से असुरक्षित हैं। वे अपने घरों में भी सुरक्षित नहीं हैं क्योंकि वहाँ भी उन्हें मारपीट तथा अनेक तरह की घरेलू हिंसा झेलनी पड़ती है।

भारत में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। क्या आप इसके कुछ कारण बता सकते हैं? क्या आप मानते हैं कि अमरीका और यूरोप में महिलाओं का प्रतिनिधित्व इस स्तर तक पहुँच गया है कि उसे संतोषजनक कहा जा सके?

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों की राष्ट्रीय संसदों में महिलाओं की संख्या (%)

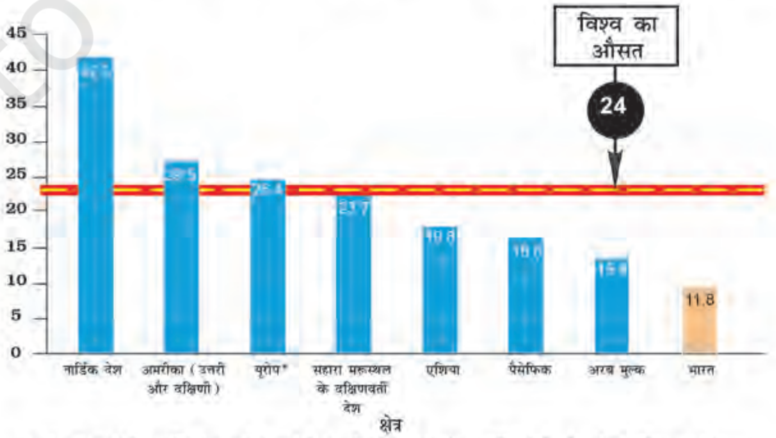

*यूरोप-ओ.एस.सी.ई. (ऑर्गेनाइजेशन फॉर सिक्युरिटी एंड कोऑपरेशन इन यूरोप): नॉर्डिक देशों (डेनमार्क, फिनलैंड, आइसलैंड, नॉर्वे और स्वीडन) को छोड़कर ओ.एस.सी.ई. के सदस्य देश।

टिप्पणी : यह आँकड़े 1 अक्तूबर 2018 तक प्रत्यक्ष निर्वाचित सदनों में महिलाओं के प्रतिशत की स्थिति बताते हैं।

स्रोत : www.ipu.org/wmn-e/world.htm

Reprint 2026-27

महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व

ये कोई छुपी हुई बात नहीं है कि औरतों की भलाई या उनके साथ समान व्यवहार वाले मुद्दों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। इसी के चलते विभिन्न नारीवादी समूह और महिला आंदोलन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जब तक औरतों का सत्ता पर नियंत्रण नहीं होगा तब तक इस समस्या का निपटारा नहीं हो सकता। इस लक्ष्य को हासिल करने का एक तरीका यह है कि जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ाई जाए।

भारत की विधायिका में महिला प्रतिनिधियों का अनुपात बहुत ही कम है। जैसे, लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या पहली बार 2019 में ही 14.36 फ़ीसदी तक पहुँच सकी है। राज्यों की विधान सभाओं में उनका प्रतिनिधित्व 5 फ़ीसदी से भी कम है। इस मामले में भारत का नंबर दुनिया के देशों में काफ़ी नीचे है [देखें पृष्ठ-44 का बॉक्स]। भारत इस मामले में अफ़्रीका और लातिन अमरीका के कई विकासशील देशों से भी पीछे है। कभी-कभार कोई महिला प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री की कुर्सी तक आ गई है पर मंत्रिमंडलों में पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है।

इस समस्या को सुलझाने का एक तरीका तो निर्वाचित संस्थाओं में महिलाओं के लिए कानूनी रूप से एक उचित हिस्सा तय कर देना है। भारत में पंचायती राज के अंतर्गत कुछ ऐसी ही व्यवस्था की गई है। स्थानीय सरकारों यानी पंचायतों और नगरपालिकाओं में एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए गए हैं। आज भारत के ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में निर्वाचित महिलाओं की संख्या 10 लाख से ज़्यादा है।

महिला संगठनों और कार्यकर्त्ताओं की माँग थी कि लोक सभा और राज्य विधान सभाओं की भी कम से कम एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर देनी चाहिए। संसद में इस आशय का एक विधेयक पेश भी किया गया था, पर कई दशकों से वह लंबित था। 2023 में, नारी शक्ति वंदन अधिनियम (महिला आरक्षण अधिनियम 2023) पारित किया गया है। जिससे लोकसभा, विधानसभा और दिल्ली विधानसभा में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटों का आरक्षण दिया जायेगा।

लैंगिक विभाजन इस बात की एक मिसाल है कि कुछ खास किस्म के सामाजिक विभाजनों को राजनीतिक रूप देने की ज़रूरत है। इससे यह भी पता चलता है कि जब सामाजिक विभाजन एक राजनीतिक मुद्दा बन जाता है तो वंचित समूहों को किस तरह लाभ होता है। क्या आपको लगता है कि अगर महिलाओं से भेदभाव भरे व्यवहार का मसला राजनीतिक तौर पर न उठता तो उनको लाभ मिल पाना संभव था?

अगर जातिवाद और संप्रदायवाद खराब चीज़ है तो नारीवाद क्यों अच्छा हैं? हम समाज को जाति, धर्म या लिंग के आधार पर बाँटने वाली हर बात का विरोध क्यों नहीं करते?

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

धर्म, सांप्रदायिकता और राजनीति

बात बोले भेद खोले

पारिवारिक कानून : विवाह, तलाक, गोद लेना और उत्तराधिकार जैसे परिवार से जुड़े मसलों से संबंधित कानून। हमारे देश में सभी धर्मों के लिए अलग-अलग पारिवारिक कानून हैं।

आइए, अब एकदम अलग किस्म के सामाजिक विभाजन की चर्चा करें यानी धार्मिक अंतरों पर आधारित विभाजन की। यह विभाजन लैंगिक विभाजन जैसा सार्वभौम तो नहीं है पर विश्व में धार्मिक विभिन्नता आज बड़ी व्यापक हो चली है। भारत समेत अनेक देशों में अलग-अलग धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं पर, जैसा कि हमने उत्तरी आयरलैंड के मामले में देखा, अगर लोग एक धर्म को मानें लेकिन उनकी पूजा-पद्धति और मान्यताएँ अलग-अलग हों तब भी गंभीर मतभेद पैदा हो जाते हैं। लैंगिक विभाजन के विपरीत धार्मिक विभाजन अक्सर राजनीति के मैदान में अभिव्यक्त होता है।

ज़रा इन बातों पर गौर करें :

- गांधी जी कहा करते थे कि धर्म को कभी भी राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म से उनका मतलब हिंदू या इस्लाम जैसे धर्म से न होकर नैतिक मूल्यों से था जो सभी धर्मों से जुड़े हैं। उनका मानना था कि राजनीति धर्म द्वारा स्थापित मूल्यों से निर्देशित होनी चाहिए।
- अपने देश में मानवाधिकार समूहों ने मांग की है कि सरकार को सांप्रदायिक दंगों को रोकने और धार्मिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए विशेष कदम उठाना चाहिए।
- महिला-आंदोलन का कहना है कि सभी धर्मों में वर्णित पारिवारिक कानून महिलाओं से भेदभाव करते हैं। इस आंदोलन की माँग है कि सरकार को इन कानूनों को समतामूलक बनाने के लिए उनमें बदलाव करने चाहिए।

ये सभी मामले धर्म और राजनीति से जुड़े हैं पर ये बहुत गलत या खतरनाक भी नहीं लगते। विभिन्न धर्मों से निकले विचार, आदर्श और मूल्य राजनीति में एक भूमिका निभा सकते हैं। लोगों को एक धार्मिक समुदाय के तौर पर अपनी ज़रूरतों, हितों ओर माँगों को राजनीति में उठाने का अधिकार होना चाहिए। जो लोग राजनीतिक सत्ता में हों उन्हें धर्म के कामकाज पर नज़र रखनी चाहिए और अगर वह किसी के साथ भेदभाव करता है या किसी के दमन में सहयोगी की भूमिका निभाता है तो इसे रोकना चाहिए। अगर शासन सभी धर्मों के साथ समान बरताव करता है तो उसके ऐसे कामों में कोई बुराई नहीं है।

सांप्रदायिकता

समस्या तब शुरू होती है जब धर्म को राष्ट्र का आधार मान लिया जाता है। पिछले अध्याय का उत्तरी आयरलैंड का उदाहरण राष्ट्रवाद की ऐसी ही अवधारणा से जुड़े खतरों को दिखाता है। समस्या तब और विकराल हो जाती है जब राजनीति में धर्म की अभिव्यक्ति एक समुदाय की विशिष्टता के दावे और पक्षपोषण का रूप लेने लगती है तथा इसके अनुयायी दूसरे धर्मावलंबियों के खिलाफ़ मोर्चा खोलने लगते हैं। ऐसा तब होता है जब एक धर्म के विचारों को दूसरे से श्रेष्ठ माना जाने लगता है और कोई एक धार्मिक समूह अपनी माँगों को दूसरे समूह के विरोध में खड़ा करने लगता है। इस प्रक्रिया में जब राज्य अपनी सत्ता का इस्तेमाल किसी एक धर्म के पक्ष में करने लगता है तो स्थिति और विकट होने लगती है। राजनीति से धर्म को इस तरह जोड़ना ही सांप्रदायिकता है।

सांप्रदायिक राजनीति इस सोच पर आधारित होती है कि धर्म ही सामाजिक समुदाय का निर्माण करता है। इस मान्यता के अनुकूल सोचना सांप्रदायिकता है। इस सोच के अनुसार एक खास धर्म में आस्था रखने वाले लोग एक ही समुदाय के होते हैं। उनके मौलिक हित एक जैसे होते हैं तथा समुदाय के लोगों के आपसी मतभेद सामुदायिक जीवन में कोई अहमियत नहीं रखते । इस सोच में यह

© NCERT not to be republished

बात भी शामिल है कि किसी अलग धर्म को मानने वाले लोग दूसरे सामाजिक समुदाय का हिस्सा नहीं हो सकते; अगर विभिन्न धर्मों के लोगों की सोच में कोई समानता दिखती है तो यह ऊपरी और बेमानी होती है। अलग-अलग धर्मों के लोगों के हित तो अलग-अलग होंगे ही और उनमें टकराव भी होगा। सांप्रदायिक सोच जब ज़्यादा आगे बढ़ती है तो उसमें यह विचार जुड़ने लगता है कि दूसरे धर्मों के अनुयायी एक ही राष्ट्र में समान नागरिक के तौर पर नहीं रह सकते। इस मानसिकता के अनुसार या तो एक समुदाय के लोगों को दूसरे समुदाय के वर्चस्व में रहना होगा या फिर उनके लिए अलग राष्ट्र बनाना होगा।

यह मान्यता बुनियादी रूप से गलत है। एक धर्म के लोगों के हित और उनकी आकांक्षाएँ हर मामले में एक जैसी हों – यह संभव नहीं है। हर व्यक्ति कई तरह की भूमिका निभाता है। उसकी हैसियत और पहचान अलग-अलग होती है। हर समुदाय में तरह-तरह के विचार के लोग होते हैं। इन सभी को अपनी बात कहने का अधिकार है इसलिए एक धर्म से जुड़े सभी लोगों को किसी गैर-धार्मिक संदर्भ में एक करके देखना उस समुदाय की विभिन्न आवाज़ों को दबाना है।

सांप्रदायिकता राजनीति में अनेक रूप धारण कर सकती है:

- सांप्रदायिकता की सबसे आम अभिव्यक्ति दैनंदिन जीवन में ही दिखती है। इनमें धार्मिक पूर्वाग्रह, धार्मिक समुदायों के बारे में बनी बनाई धारणाएँ और एक धर्म को दूसरे धर्म से श्रेष्ठ मानने की मान्यताएँ शामिल हैं। ये चीज़ें इतनी आम हैं कि अक्सर हम उन पर ध्यान तक नहीं देते जबकि ये हमारे अंदर ही बैठी होती हैं।
- सांप्रदायिक सोच अक्सर अपने धार्मिक समुदाय का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के फ़िराक में रहती है। जो लोग बहुसंख्यक समुदाय के होते हैं उनकी यह कोशिश बहुसंख्यकवाद का रूप ले लेती है। जो अल्पसंख्यक समुदाय के होते हैं उनमें यह विश्वास अलग राजनीतिक इकाई बनाने की इच्छा का रूप ले लेता है।
- सांप्रदायिक आधार पर राजनीतिक गोलबंदी सांप्रदायिकता का दूसरा रूप है। इसमें धर्म के पवित्र प्रतीकों, धर्मगुरुओं, भावनात्मक अपील और अपने ही लोगों के मन में डर बैठाने जैसे तरीकों का उपयोग बहुत आम है। चुनावी राजनीति में एक धर्म के मतदाताओं की भावनाओं या हितों की बात उठाने जैसे तरीके अक्सर अपनाए जाते हैं।
- कई बार सांप्रदायिकता सबसे गंदा रूप लेकर संप्रदाय के आधार पर हिंसा, दंगा और नरसंहार कराती है। विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान में भयावह सांप्रदायिक दंगे हुए थे। आज़ादी के बाद भी बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक हिंसा हुई है।

धर्मनिरपेक्ष शासन

सांप्रदायिकता हमारे देश के लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती रही है। हमारे संविधान निर्माता इस चुनौती के प्रति सचेत थे। इसी कारण उन्होंने धर्मनिरपेक्ष शासन का मॉडल चुना और इसी आधार पर संविधान में अनेक प्रावधान किए गए इनके बारे में हम पिछले साल पढ़ चुके हैं।

- भारतीय राज्य ने किसी भी धर्म को राजकीय धर्म के रूप में अंगीकार नहीं किया है। श्रीलंका में बौद्ध धर्म, पाकिस्तान में इस्लाम और इंग्लैंड में ईसाई धर्म का जो दर्जा रहा है उसके विपरीत भारत का संविधान किसी धर्म को विशेष दर्जा नहीं देता।
- संविधान सभी नागरिकों और समुदायों को किसी भी धर्म का पालन करने और प्रचार करने की आज़ादी देता है।
- संविधान धर्म के आधार पर किए जाने वाले किसी तरह के भेदभाव को अवैधानिक घोषित करता है।

मैं अक्सर दूसरे धर्म के लोगों के बारे में चुटकुले सुनाता हूँ। क्या इससे मैं भी सांप्रदायिक बन जाता हूँ?

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

- इसके साथ ही संविधान धार्मिक समुदायों में समानता सुनिश्चित करने के लिए शासन को धार्मिक मामलों में दखल देने का अधिकार देता है। जैसे, यह छुआछूत की इजाज़त नहीं देता।

इस हिसाब से देखें तो धर्मनिरपेक्षता कुछ पार्टियों या व्यक्तियों की एक विचारधारा भर नहीं है। यह विचार हमारे संविधान की बुनियाद है। सांप्रदायिकता भारत में सिर्फ़ कुछ लोगों के लिए ही एक खतरा नहीं है। यह भारत की बुनियादी अवधारणा के लिए एक चुनौती है, एक खतरा है। हमारी तरह का धर्मनिरपेक्ष संविधान ज़रूरी चीज़ है पर अकेले इसी के बूते सांप्रदायिकता का मुकाबला नहीं किया जा सकता। हमें अपने दैनंदिन जीवन में सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों और दुष्प्रचारों का मुकाबला करना होगा तथा धर्म पर आधारित गोलबंदी का मुकाबला राजनीति के दायरे में करने की ज़रूरत है।

जाति और राजनीति

हमने राजनीति में सामाजिक विभाजन की दो अभिव्यक्तियाँ देखीं। इनमें एक मोटे तौर पर सकारात्मक या लाभदायक है तो दूसरी नकारात्मक या नुकसानदेह। आइए, अब अंतिम प्रमुख विभाजन– यानी जाति और राजनीति की चर्चा करें इसके सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों ही पक्ष हैं।

जातिगत असमानताएँ

लिंग और धर्म पर आधारित विभाजन तो दुनिया भर में हैं पर जाति पर आधारित विभाजन सिर्फ़ भारतीय समाज में ही देखने को मिलता है। सभी समाजों में कुछ सामाजिक असमानताएँ और एक न एक तरह का श्रम का विभाजन मौजूद होता है। अधिकतर समाजों में पेशा परिवार की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाता है। लेकिन जाति व्यवस्था इसका एक अतिवादी और स्थायी रूप है। अन्य समाजों में मौजूद असमानताओं से यह एक खास अर्थ में भिन्न है। इसमें पेशा के वंशानुगत विभाजन को रीति-रिवाजों की मान्यता प्राप्त है। एक जाति समूह के लोग एक या मिलते-जुलते पेशों के तो होते ही हैं साथ ही उन्हें एक अलग सामाजिक समुदाय के रूप में भी देखा जाता है। उनमें आपस में ही बेटी-रोटी अर्थात शादी और खानपान का संबंध रहता है। अन्य जाति समूहों में उनके बच्चों की न तो शादी हो सकती है न महत्वपूर्ण पारिवारिक और सामुदायिक आयोजनों में उनकी पाँत में बैठकर दूसरी जाति के लोग भोजन कर सकते हैं।

वर्ण-व्यवस्था अन्य जाति-समूहों से भेदभाव और उन्हें अपने से अलग मानने की धारणा पर आधारित है। इसमें 'अंत्यज' जातियों के साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता था। इसकी चर्चा हमने 9वीं कक्षा में की थी। यही कारण है कि ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी, डॉ. आंबेडकर और पेरियार रामास्वामी नायकर जैसे राजनेताओं और समाज सुधारकों ने जातिगत भेदभाव से मुक्त समाज व्यवस्था बनाने की बात की और उसके लिए काम किया।

इन महापुरुषों के प्रयासों और सामाजिक-आर्थिक बदलावों के चलते आधुनिक भारत में जाति की संरचना और जाति व्यवस्था में भारी बदलाव आया है। आर्थिक विकास, शहरीकरण, साक्षरता और शिक्षा के विकास, पेशा चुनने की आज़ादी और गाँवों में ज़मींदारी व्यवस्था के कमज़ोर पड़ने से जाति व्यवस्था के पुराने स्वरूप और वर्ण व्यवस्था पर टिकी मानसिकता में बदलाव आ रहा है। शहरी इलाकों में तो अब ज़्यादातर इस बात का कोई हिसाब नहीं रखा जाता कि ट्रेन या बस में आपके साथ कौन बैठा है या रेस्तराँ में आपकी मेज़ पर बैठकर खाना खा रहे आदमी की जाति क्या है? संविधान में किसी भी तरह के जातिगत भेदभाव का निषेध

बात बोले भेद खोले

वर्ण-व्यवस्था : जाति समूहों का पदानुक्रम जिसमें एक जाति के लोग हर हाल में सामाजिक पायदान में सबसे ऊपर रहेंगे तो किसी अन्य जाति समूह के लोग क्रमागत के रूप से उनके नीचे।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

किया गया है। संविधान ने जाति व्यवस्था से पैदा हुए अन्याय को समाप्त करने वाली नीतियों का आधार तय किया है। अगर सौ साल पहले का कोई व्यक्ति एक बार फिर भारत लौटकर आए तो यहाँ हुए बदलावों को देखकर हैरान रह जाएगा।

बहरहाल, समकालीन भारत से जाति प्रथा विदा नहीं हुई है। जाति व्यवस्था के कुछ पुराने पहलू अभी भी बरकरार हैं। अभी भी ज़्यादातर लोग अपनी जाति या कबीले में ही शादी करते हैं। स्पष्ट संवैधानिक प्रावधान के बावजूद छुआछूत की प्रथा अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। जाति व्यवस्था के अंतर्गत सदियों से कुछ समूहों को लाभ की स्थिति में तो कुछ समूहों को दबाकर रखा गया है। इसका प्रभाव सदियों बाद आज तक नज़र आता है। जिन जातियों में पहले से ही पढ़ाई-लिखाई का चलन मौजूद था और जिनकी शिक्षा पर पकड़ थी, आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भी उन्हीं का बोलबाला है। जिन जातियों को पहले शिक्षा से वंचित रखा जाता था उनके सदस्य अभी भी स्वाभाविक तौर पर पिछड़े हुए हैं। यही कारण है कि शहरी मध्यम वर्ग में अगड़ी जाति के लोगों का अनुपात असामान्य रूप से काफ़ी ज़्यादा है। जाति और आर्थिक हैसियत में काफ़ी निकट का संबंध है। [जातिगत असमानताएँ शीर्षक बॉक्स देखें]

राजनीति में जाति

सांप्रदायिकता की तरह जातिवाद भी इस मान्यता पर आधारित है कि जाति ही सामाजिक समुदाय के गठन का एकमात्र आधार है। इस चिंतन पद्धति के अनुसार एक जाति के लोग एक स्वाभाविक सामाजिक समुदाय का निर्माण करते हैं और उनके हित एक जैसे होते हैं तथा दूसरी जाति के लोगों से उनके हितों का कोई मेल नहीं होता। जैसा कि हमने सांप्रदायिकता के मामले में देखा है,

मुझे अपनी जाति की परवाह नहीं रहती। हम पाठ्यपुस्तक में इसकी चर्चा क्यों कर रहे हैं? क्या हम जाति पर चर्चा करके जातिवाद को बढ़ावा नहीं दे रहे हैं?

अब तुम्हें यह पसंद नहीं आ रहा है! क्या तुम्हीं ने नहीं कहा था कि जहाँ भी प्रभुत्व या वर्चस्व की बात आए तो हमें राजनीति विज्ञान में उसकी चर्चा करनी चाहिए? क्या हमारे चुप रहने से जाति व्यवस्था समाप्त हो जाएगी?

यह मान्यता हमारे अनुभव से पुष्ट नहीं होती। हमारे अनुभव बताते हैं कि जाति हमारे जीवन का एक पहलू ज़रूर है लेकिन यही एकमात्र या सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण पहलू नहीं है। राजनीति में जाति अनेक रूप ले सकती है–

- जब पार्टियाँ चुनाव के लिए उम्मीदवारों के नाम तय करती हैं तो चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं की जातियों का हिसाब ध्यान में रखती हैं ताकि उन्हें चुनाव जीतने के लिए ज़रूरी वोट मिल जाए। जब सरकार का गठन किया जाता है तो राजनीतिक दल इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसमें विभिन्न जातियों और कबीलों के लोगों को उचित जगह दी जाए।
- राजनीतिक पार्टियाँ और उम्मीदवार समर्थन हासिल करने के लिए जातिगत भावनाओं को उकसाते हैं। कुछ दलों को कुछ जातियों के मददगार और प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है।
- सार्वभौम वयस्क मताधिकार और एक व्यक्ति-एक वोट की व्यवस्था ने राजनीतिक दलों को विवश किया कि वे राजनीतिक समर्थन पाने और लोगों को गोलबंद करने के लिए सक्रिय हों। इससे उन जातियों के लोगों में नयी चेतना पैदा हुई जिन्हें अभी तक छोटा और नीच माना जाता था।

बात बोले भेद खोले

शहरीकरण : ग्रामीण इलाकों से निकलकर लोगों का शहरों में बसना।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

भारत की सामाजिक और धार्मिक विविधता

जनगणना में प्रत्येक दस साल बाद सभी नागरिकों के धर्म को भी दर्ज किया जाता है। जनगणना विभाग के आदमी घर-घर जाकर लोगों से उनके बारे में सूचनाएँ जुटाते हैं। धर्म समेत सभी बातों के बारे में लोग जो कुछ बताते हैं, ठीक वैसा ही फार्म में दर्ज किया जाता है। अगर कोई कहता है कि वह नास्तिक है या किसी धर्म को नहीं मानता तो फार्म में भी इसे वैसे ही दर्ज कर दिया जाता है। इस कारण देश में विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों की संख्या और उनके अनुपात में आए किसी बदलाव के बारे में हमारे पास विश्वसनीय सूचनाएँ हैं। नीचे दिए गए पाई चार्ट से देश के छह प्रमुख धार्मिक समुदायों की आबादी के अनुपात का पता चलता है।

आज़ादी के बाद से प्रत्येक धार्मिक समुदाय की आबादी तो काफ़ी बढ़ी है पर कुल आबादी में उनका अनुपात ज़्यादा नहीं बदला है। प्रतिशत के हिसाब से देखें तो 1961 के बाद से हिंदू, जैन और ईसाई समुदाय का हिस्सा मामूली रूप से घटा है जबकि मुसलमान, सिख और बौद्धों का हिस्सा मामूली रूप से बढ़ा है।

एक आम लेकिन भ्रांत धारणा यह है कि देश की आबादी में मुसलमानों का प्रतिशत इतना बढ़ जाएगा कि दूसरे धार्मिक समुदाय उससे पीछे हो जाएँगे। प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त उच्चस्तरीय समिति (इसे सच्चर समिति के नाम से जाना गया) के आकलन से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम आबादी का अनुपात थोड़ा ज़रूर बढ़ेगा लेकिन अगले पचास सालों में भी यह बढ़वार 3–4 प्रतिशत तक ही रहेगी। इससे साबित होता है कि एक व्यापक फलक पर विभिन्न धार्मिक समुदायों के अनुपात में कोई बड़ा उलट-फेर नहीं होने वाला।

यही बात प्रमुख जाति समूहों पर भी लागू होती है। जनगणना में सिर्फ दो विशिष्ट समूहों : अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की गिनती अलग से दर्ज की जाती है। इन दोनों बड़े समूहों में ऐसी सैंकड़ों जातियाँ और आदिवासी समूह शामिल हैं जिनके नाम सरकारी अनुसूची में दर्ज हैं। इसी के चलते इनके नाम के साथ 'अनुसूचित' शब्द लगाया गया है। अनुसूचित जातियों में, जिन्हें आम तौर पर दलित कहा जाता है, सामान्यतः वे हिंदू जातियाँ आती हैं जिन्हें हिंदू सामाजिक व्यवस्था में अछूत माना जाता था। इन जातियों के साथ भेदभाव किया जाता था और इन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। अनुसूचित जनजातियों में जिन्हें आमतौर पर आदिवासी कहा जाता है, वे समुदाय शामिल हैं जो अमूमन पहाड़ी और जंगली इलाकों में रहते हैं और जिनका बाकी समाज से ज़्यादा मेल-जोल नहीं था। 2011 में, देश की आबादी में अनुसूचित जातियों का हिस्सा 16.6 फ़ीसदी और अनुसूचित जनजातियों का हिस्सा 8.6 फ़ीसदी था।

जनगणना में अभी तक अन्य पिछड़ी जातियों की गिनती नहीं की जाती। इनकी चर्चा हमने 9वीं कक्षा में की थी। पूरे देश में इनकी आबादी कितनी है – इस बात को लेकर कोई एक स्पष्ट अनुमान नहीं है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, 2004-05 का अनुमान है कि इनकी आबादी करीब 41 फीसदी है। इस प्रकार मुल्क की आबादी में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों का हिस्सा लगभग दो तिहाई तथा हिंदुओं की आबादी का लगभग तीन-चौथाई है।

भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों की आबादी, 2011

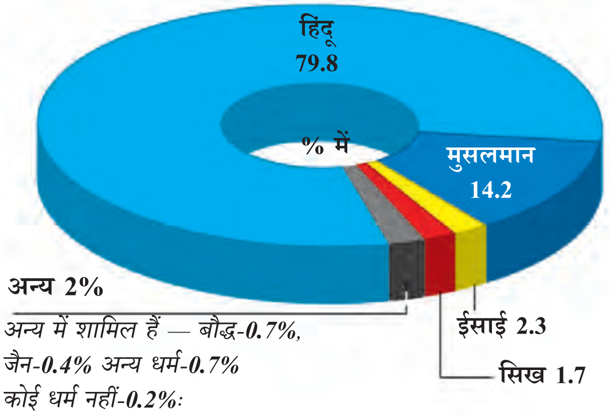

अन्य में शामिल हैं — बौद्ध-0.7%, जैन-0.4% अन्य धर्म-0.7% कोई धर्म नहीं-0.2%:

स्रोत: जनगणना, 2011

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

राजनीति में जाति पर जोर देने के कारण कई बार यह धारणा बन सकती है कि चुनाव जातियों का खेल है, कुछ और नहीं। यह बात सच नहीं है। जरा इन चीज़ों पर गौर कीजिए :

- देश के किसी भी एक संसदीय चुनाव क्षेत्र में किसी एक जाति के लोगों का बहुमत नहीं है इसलिए हर पार्टी और उम्मीदवार को चुनाव जीतने के लिए एक जाति और एक समुदाय से ज़्यादा लोगों का भरोसा हासिल करना पड़ता है।
- कोई भी पार्टी किसी एक जाति या समुदाय के सभी लोगों का वोट हासिल नहीं कर सकती। जब लोग किसी जाति विशेष को किसी एक पार्टी का 'वोट बैंक' कहते हैं तो इसका मतलब यह होता है कि उस जाति के ज़्यादातर लोग उसी पार्टी को वोट देते हैं।
- अगर किसी चुनाव क्षेत्र में एक जाति के लोगों का प्रभुत्व माना जा रहा हो तो अनेक पार्टियों को उसी जाति का उम्मीदवार खड़ा करने से कोई रोक नहीं सकता। ऐसे में कुछ मतदाताओं के सामने उनकी जाति के एक से ज़्यादा उम्मीदवार होते हैं तो किसी-किसी जाति के मतदाताओं के सामने उनकी जाति का एक भी उम्मीदवार नहीं होता।
- हमारे देश में सत्तारूढ़ दल, वर्तमान सांसदों और विधायकों को अक्सर हार का सामना करना पड़ता है। अगर जातियों और समुदायों की राजनीतिक पसंद एक ही होती तो ऐसा संभव नहीं हो पाता।

स्पष्ट है कि चुनाव में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है किंतु दूसरे कारक भी इतने ही असरदार होते हैं। मतदाता अपनी जातियों से जितना जुड़ाव रखते हैं अक्सर उससे ज़्यादा गहरा जुड़ाव राजनीतिक दलों से रखते हैं। एक जाति या समुदाय के भीतर भी अमीर और गरीब लोगों के हित अलग-अलग होते हैं। एक ही समुदाय के अमीर और गरीब लोग अक्सर अलग-अलग पार्टियों को वोट देते हैं। सरकार के कामकाज के बारे में लोगों की राय और नेताओं की लोकप्रियता का चुनावों पर अक्सर निर्णायक असर होता है।

जाति के अंदर राजनीति

अभी तक हमने इसी चीज़ पर गौर किया है कि राजनीति में जाति की क्या भूमिका होती है। पर, इसका यह मतलब नहीं है कि जाति और राजनीति के बीच सिर्फ़ एकतरफ़ा संबंध होता है। राजनीति भी जातियों को राजनीति के अखाड़े में लाकर जाति व्यवस्था और जातिगत पहचान को प्रभावित करती है। इस तरह, सिर्फ़ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। यह चीज़ अनेक रूप लेती है :

- हर जाति खुद को बड़ा बनाना चाहती है। सो, पहले वह अपने समूह की जिन उप जातियों को छोटा या नीचा बताकर अपने से बाहर रखना चाहती थी अब उन्हें अपने साथ लाने की कोशिश करती हैं।
- चूँकि एक जाति अपने दम पर सत्ता पर कब्ज़ा नहीं कर सकती इसलिए वह ज़्यादा राजनीतिक ताकत पाने के लिए दूसरी जातियों

क्या आपको यह बात ठीक लगती है कि राजनेता किसी जाति के लोगों को अपने वोट-बैंक के रूप में देखें?

अजीत नीनन-इंडिया टुडे बुक ऑफ़ कार्टून्स

not to be republished © NCERT

Reprint 2026-27

जातिगत असमानता

आर्थिक असमानता का एक महत्वपूर्ण आधार जाति भी है क्योंकि इससे विभिन्न संसाधनों तक लोगों की पहुँच निर्धारित होती है। उदाहरण के लिए पहले 'अछूत' कही जाने वाली जातियों के लोगों को ज़मीन रखने का अधिकार नहीं था जबकि कथित 'द्विज' जातियों को ही शिक्षा पाने का अधिकार था। आज जाति पर आधारित इस किस्म की औपचारिक और प्रकट असमानताएँ तो गैरकानूनी हो गई है पर सदियों से जिस व्यवस्था ने कुछ समूहों को लाभ या घाटे की स्थिति में बनाए रखा है उसका संचित असर अभी भी महसूस किया जा सकता है। इतना ही नहीं, इस बीच नयी तरह की असमानताएँ भी उभरी हैं।

निश्चित रूप से जाति और आर्थिक हैसियत की पुरानी स्थिति में काफ़ी बदलाव आया है। आज 'ऊँची' या 'नीची' किसी भी जाति में बहुत अमीर और बहुत गरीब लोग देखे जा सकते हैं। बीस या तीस वर्ष पहले तक ऐसा नहीं था। तब सबसे 'नीची' जातियों में कोई अमीर आदमी बमुश्किल ही ढूँढ़े मिलता था। पर, जैसा कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से स्पष्ट है – आज भी जाति आर्थिक हैसियत के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है:

- औसत आर्थिक हैसियत [जिसे मासिक खर्च जैसे हिसाबों से मापा जाता है] अभी भी वर्णव्यवस्था के साथ गहरा संबंध दर्शाती है यानी 'ऊँची' जाति के लोगों की आर्थिक स्थिति सबसे अच्छी है। दलित तथा आदिवासियों की आर्थिक स्थिति सबसे खराब है, जबकि पिछड़ी जातियाँ बीच की स्थिति में हैं।

- हर जाति में गरीब लोग हैं, पर भारी दरिद्रता में [सरकारी गरीबी रेखा के नीचे] जीवन बसर करने वालों में ज़्यादा बड़ी संख्या सबसे निचली जातियों के लोगों की है। ऊँची जातियों में गरीबी का प्रतिशत सबसे कम है। इस मामले में भी पिछड़ी जातियों के लोग बीच की स्थिति में है।

- आज सभी जातियों में अमीर लोग हैं पर यहाँ भी ऊँची जाति वालों का अनुपात बहुत ज़्यादा है और निचली जातियों का बहुत कम।

गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वालों का प्रतिशत अनुपात, 1999–2000

जाति और समुदाय	ग्रामीण	शहरी
अनुसूचित जनजातियाँ	45.8	35.6
अनुसूचित जातियाँ	35.9	38.3
अन्य पिछड़ी जातियाँ	27.00	29.5
मुसलमान अगड़ी जातियाँ	26.8	34.2
हिंदू अगड़ी जातियाँ	11.7	9.9
ईसाई अगड़ी जातियाँ	9.6	5.4
ऊँची जाति के सिख	0.0	4.9
अन्य अगड़ी जातियाँ	16.0	2.7
सभी समूह	27.0	23.4

नोट : यहाँ अगड़ी जाति का मतलब उन सभी लोगों से है जो अनुसूचित जाति/जनजाति या पिछड़ी जातियों के अंतर्गत नहीं आते। गरीबी रेखा से नीचे का मतलब है प्रति व्यक्ति प्रति माह 327 रुपए [ग्रामीण] और 455 [शहरी] रुपये से कम खर्च करने वाले लोग।

स्रोत : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, 55वाँ दौर, 1999–2000

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

राजनीतिक ताकत पाने के लिए दूसरी जातियों या समुदायों को साथ लेने की कोशिश करती है और इस तरह उनके बीच संवाद और मोल-तोल होता है।

- राजनीति में नए किस्म की जातिगत गोलबंदी भी हुई हैं, जैसे 'अगड़ा' और 'पिछड़ा'।

इस प्रकार जाति राजनीति में कई तरह की भूमिकाएँ निभाती है और एक तरह से यही चीज़ें दुनिया भर की राजनीति में चलती हैं। दुनिया भर में राजनीतिक पार्टियाँ वोट पाने के लिए सामाजिक समूहों और समुदायों को गोलबंद करने का प्रयास करती हैं। कुछ खास स्थितियों में राजनीति में जातिगत विभिन्नताएँ और असमानताएँ वंचित और कमज़ोर समुदायों के लिए अपनी बातें आगे बढ़ाने और सत्ता में अपनी हिस्सेदारी माँगने की गुंजाइश भी पैदा करती हैं। इस अर्थ में जातिगत राजनीति ने दलित और पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए सत्ता तक पहुँचने तथा निर्णय प्रक्रिया को बेहतर ढंग से प्रभावित करने की स्थिति भी पैदा की है। अनेक पार्टियाँ और गैर-राजनीतिक संगठन खास जातियों के खिलाफ़ भेदभाव समाप्त करने, उनके साथ ज़्यादा सम्मानजनक व्यवहार करने, उनके लिए ज़मीन-ज़ायदाद और अवसर उपलब्ध कराने की माँग को लेकर आंदोलन करते रहे हैं। पर, इसके साथ ही यह भी सच है कि सिर्फ़ जाति पर जोर देना नुकसानदेह हो सकता है। जैसा कि धर्म के मसले से स्पष्ट होता है, सिर्फ़ जातिगत पहचान पर आधारित राजनीति लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं होती। इससे अक्सर गरीबी, विकास, भ्रष्टाचार जैसे ज़्यादा बड़े मुद्दों से लोगों का ध्यान भी भटकता है। कई बार जातिवाद तनाव, टकराव और हिंसा को भी बढ़ावा देता है।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

प्रश्नावली

1. जीवन के उन विभिन्न पहलुओं का ज़िक्र करें जिनमें भारत में स्त्रियों के साथ भेदभाव होता है या वे कमज़ोर स्थिति में होती हैं।
2. विभिन्न तरह की सांप्रदायिक राजनीति का ब्यौरा दें और सबके साथ एक-एक उदाहरण भी दें।
3. बताइए कि भारत में किस तरह अभी भी जातिगत असमानताएँ जारी हैं।
4. दो कारण बताएँ कि क्यों सिर्फ़ जाति के आधार पर भारत में चुनावी नतीजे तय नहीं हो सकते।
5. भारत की विधायिकाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की स्थिति क्या है?
6. किन्हीं दो प्रावधानों का ज़िक्र करें जो भारत को धर्मनिरपेक्ष देश बनाते हैं।
7. जब हम लैंगिक विभाजन की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है :
   (क) स्त्री और पुरुष के बीच जैविक अंतर
   (ख) समाज द्वारा स्त्री और पुरुष को दी गई असमान भूमिकाएँ
   (ग) बालक और बालिकाओं की संख्या का अनुपात
   (घ) लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में महिलाओं को मतदान का अधिकार न मिलना
8. भारत में यहाँ औरतों के लिए आरक्षण की व्यवस्था है :
   (क) लोकसभा
   (ख) विधानसभा
   (ग) मंत्रिमंडल
   (घ) पंचायती राज की संस्थाएँ
9. सांप्रदायिक राजनीति के अर्थ संबंधी निम्नलिखित कथनों पर गौर करें। सांप्रदायिक राजनीति इस धारणा पर आधारित है कि :
   (अ) एक धर्म दूसरों से श्रेष्ठ है।
   (ब) विभिन्न धर्मों के लोग समान नागरिक के रूप में खुशी-खुशी साथ रह सकते हैं।
   (स) एक धर्म के अनुयायी एक समुदाय बनाते हैं।
   (द) एक धार्मिक समूह का प्रभुत्व बाकी सभी धर्मों पर कायम करने में शासन की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

   इनमें से कौन या कौन-कौन सा कथन सही है?

   (क) अ, ब, स और द (ख) अ, ब और द (ग) अ और स (घ) ब और द
10. भारतीय संविधान के बारे में इनमें से कौन सा कथन गलत है?
   (क) यह धर्म के आधार पर भेदभाव की मनाही करता है।
   (ख) यह एक धर्म को राजकीय धर्म बताता है।
   (ग) सभी लोगों को कोई भी धर्म मानने की आज़ादी देता है।
   (घ) किसी धार्मिक समुदाय में सभी नागरिकों को बराबरी का अधिकार देता है।
11. .... पर आधारित सामाजिक विभाजन सिर्फ़ भारत में ही है।
12. सूची I और सूची II का मेल कराएँ और नीचे दिए गए कोड के आधार पर सही जवाब खोजें।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

	सूची I	सूची II
1.	अधिकारों और अवसरों के मामले में स्त्री और पुरुष की बराबरी मानने वाला व्यक्ति	(क) सांप्रदायिक
2.	धर्म को समुदाय का मुख्य आधार मानने वाला व्यक्ति	(ख) नारीवादी
3.	जाति को समुदाय का मुख्य आधार मानने वाला व्यक्ति	(ग) धर्मनिरपेक्ष
4.	व्यक्तियों के बीच धार्मिक आस्था के आधार पर भेदभाव न करने वाला व्यक्ति	(घ) जातिवादी

	1	2	3	4
(सा)	ख	ग	क	घ
(रे)	ख	क	घ	ग
(गा)	घ	ग	क	ख
(मा)	ग	क	ख	घ

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27